शोध पत्र का शीर्षक- "हिंदी ग़ज़ल साहित्य में चित्रित कृषक जीवन का यथार्थ"

शोधार्थी का नाम :- कृष्ण कुमार
पदनाम :- शोधार्थी
शोध निर्देशक - प्रो0 राम कृष्ण (नेशनल पी. जी. कालेज लखनऊ)
विभाग:- हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
संस्थान का पूरा पता:- लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शोध सार-

कृषि संस्कृति भारत की सबसे प्राचीन संस्कृति है और किसान अन्नदाता है। कहने को तो किसान देश का भाग्यविधाता है परन्तु आजाद भारत में आज भी किसान साज़िश का शिकार हो रहा है नौकरशाही व्यवस्था किसान का खून चूस जा रही है अधिकारी-कर्मचारी किसान का शोषण करने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं तथा विदेशी कंपनियां किसानों को दिल खोलकर लूट रही हैं। पत्रकार और मीडिया किसान के मुद्दों पर बिल्कुल संवेदनहीन रहते है। नेता और वर्तमान राजनीति भी आज किसानों के सपनों पर पानी फेर रहें हैं। आज के आधुनिक युग में किसान को अपना घर-परिवार चलाना मुश्किल हो गया है। कभी खाद, कभी बीज, कभी सिंचाई तो कभी बच्चों की पढ़ाई उसको कर्ज के जाल में फंसाते जा रहे हैं और बेबस आधुनिक किसान स्वयं को आधुनिकता की चकाचौंध से विनाश के मुंह में ढकेलता जा रहा है।

बीज शब्द -

ग़ज़ल, किसान, संघर्ष, कर्ज, आपदा, भूखमरी, मंहगाई, शोषण, आत्महत्या।

प्रस्तावना -

हमारा देश भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत देश की मानव संपदा का अधिकांश भाग कृषि में संलग्न है। मनुष्य का जीवन जितना प्राचीन है, सम्भवतः कृषि संस्कृति भी उतनी ही प्राचीन है। किसी भी देश की समृद्धि तभी मानी जाती है, जब उस देश की आम जनता खुशहाल हो। खुशहाल जनता की तीन मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं रोटी, कपड़ा और मकान। जिसमें रोटी मुख्य घटक है। रोटी को पैदा करने वाला किसान है अतः किसान का खुशहाल होना राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि किसी देश की जनता भूख के दुःख से पीड़ित है तो समझो उस देश का किसान दुःखी है। क्योंकि किसान सामाजिक संरचना का आधार स्तम्भ होता है। समाज का उत्पादक वर्ग किसान ही होता है। उसकी उन्नति से ही देश की उन्नति सम्भव है। उसकी बदहाली देश की बदहाली है। परन्तु औपनिवेशिक समाज में किसान की हालत सबसे दयनीय है। समकालीन समाज में किसान सबका नरम चारा है। बातें तो सब ऐसी करते हैं जैसे सब किसान के बहुत हितैसी हैं परंतु जिसको अवसर मिलता है वह किसान का खून चूसने में कोई कसर नहीं छोड़ता। लेखपाल और पटवारी को यदि नज़राना न दे तो खेती कर पाना मुश्किल है, वनरक्षक व चौकीदार की ख़ातिरदारी न करे तो चूल्हे की लकड़ी का जुगाड़ न हो, थानेदार और सिपाही तो जैसे दामाद हो अगर इनका आदर सत्कार समय पर न हो तो सारी जिंदगी जेल और अदालत में बीत जाय, बैंक बाबू यदि नाराज़ हो जाय तो फिर दरवाजे से बारात लौटना तय है, बड़े बड़े नौकरशाह अवसर पाते ही बाढ़ और सूखा का राहत बजट ही खा जाते हैं। कोई यह नहीं सोचते कि किसान भी आदमी है, उनके भी बाल बच्चे है, उनकी भी इज्जत आबरू है। किसान को किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। किसान समस्त मानव जाति के अतरिक्त अन्य जीवों का भी पेट भरता है। धरती और किसान का माँ-बेटे का रिश्ता होता है। क्यों कि किसान धरती पर केवल खेती ही नहीं करता है, बल्कि पशुपालन, वृक्षारोपण और पर्यावरण आदि का संरक्षण भी करता है। सच्चे अर्थों में किसान ही प्रकृति का संरक्षक है। परन्तु यह भी सही है कि समाज में सबसे ज्यादा शोषित और पीड़ित किसान ही रहता है क्योंकि किसान आजीवन कर्ज में डूबा रहता है। "**किसान कर्ज में पैदा होता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज़ में ही**

मर जाता है और कर्ज़ ही विरासत में छोड़ जाता है, यह बात जितनी आज से सौ साल पहले सच थी, उतनी ही सच आज भी है।"[i] किसान ही सदैव शोषण की चक्की में पिसता है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिसकी मेहनत से पूरे देश का पेट भरता है, वही किसान स्वयं अभावग्रस्त होकर मरता है।

हिन्दी साहित्य में कृषक समाज के दर्द पर केन्द्रित अनेक कालजयी और प्रसिद्ध रचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रसिद्ध कवियों, कहानीकारों, उपन्यासकारों, नाटककारों तथा निबन्धकारों ने किसान के जीवन पर रचनाएँ लिखी हैं। भक्तिकाल में तुलसीदास ने किसान की दयनीय दशा का चित्रण कवितावली में किया तो आधुनिक काल में उसी दशा का चित्रण मुंशी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास और कहानियों में किया है। मुंशी प्रेमचन्द का प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' तो किसान जीवन का महाकाव्य है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, हरिवंशराय बच्चन, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त, विवेकी राय, सियारामशरण गुप्त, मिथिलेश्वर, शिवमूर्ति, राकेश कुमार सिंह आदि कवियों व लेखकों ने किसान साहित्य लेखन परम्परा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

शोध का विस्तार -

ग़ज़ल आधुनिक हिंदी साहित्य की एक चर्चित विधा है हिंदी ग़ज़ल एक ऐसा रचना काल है जिसमें आधुनिकता, प्रगतिशीलता व यथार्थवाद सबसे अहम मुद्दे हैं। यह कहने में कोई संशय नहीं है कि दुष्यंत कुमार के नेतृत्व ने न केवल ग़ज़ल को उर्दू फ़ारसी की काव्य विधा होने की परिधि से बाहर ही नही निकाला वरन् अपनी अद्भुत संप्रेषण शक्ति और प्रभावोत्पादकता से एहसास कराया कि ग़ज़ल माशूका से बातचीत करने वाली अपनी पारंपरिकता को छोड़कर वह आम लोगों के दुःख दर्द से बातचीत करने वाली लोकप्रिय काव्य विधा बन सकती है। आधुनिक हिंदी ग़ज़ल में भारतीय समाज का ऐसा स्वर विद्यमान है जिसमें सामाजिकता, मानवतावाद, राष्ट्रवाद, प्रकृति-प्रेम, स्त्री-युवा-दलितों का संघर्ष विद्यमान है।

आधुनिक हिंदी ग़ज़ल साहित्य में अभिव्यक्त एक प्रमुख स्वर किसानों के संघर्ष का है। जिसमें किसानों की बदहाली पर विस्तार से चर्चा की गई है। कहने को तो किसान देश का अन्नदाता है परन्तु वहीं अन्नदाता जीवन भर कर्ज के बोझ के नीचे दबा रहता है। साहूकार और बैंक अधिकारियों की लगातार प्रताड़ना उसकी आत्मा को धिक्कारती है, उसके जीवित होने को ललकारती है, उन स्थितियों में आत्महत्या के अलावा और कोई उपाय उसे दिखाई नहीं देता। "**फ़सल को बीमारी से मुक्त करने के लिए जिस कीटनाशक दवाई का प्रयोग किया जाता है, अधिकांश किसान उसे ही पीकर आत्महत्या कर रहे हैं।**"[ii]

आज स्वतंत्र भारत में किसान की इस दुर्दशा का प्रमुख जिम्मेदार सरकारी तंत्र है। जिसमें नेता कुर्सी के लिए तो बड़े बड़े वादे करते हैं और जब उनका वोट पाकर सत्ता में पहुंचते हैं तो फिर गिरगिट की तरह रंग बदल लेते हैं और किसान उसी गरीबी, भुखमरी व मजबूरी की आग में जलता रहता है समय-समय पर कुछ किसान नेता उनके हितों के लिए आन्दोलन भी करते हैं परन्तु परिणाम शून्य ही निकलता है-

"कुर्सी के लिए गिरते संभलते हों रहनुमा,

गिरगिट की तरह रंग बदलते हो रहनुमा।

जनता को हक है हाथ में हथियार उठा ले,

जब भुखमरी की धूप में जलते किसान हो।"[iii]

हमारे देश में नौकरशाही पूरी तरह से हावी है और नौकरशाह इतना भ्रष्ट हो चुके हैं कि वे अपना परिवार सरकार द्वारा जारी किए गए वेतन से नहीं चला पा रहे हैं फलस्वरूप वे अवैध कमाई के अनेक रास्ते अपना रहें हैं तथा किसान को सरकार द्वारा दिए जाने वाले सूखा व बाढ़ की राहत राशि पर भी डाका डाल रहें हैं और लूटी गई धनराशि से अपने परिवार के लिए ऐश-ओ-आराम के सामान खरीद रहे हैं कुछ बड़े अधिकारी तो इतने भूखे होते हैं, पेट इतना बड़ा हो जाता है कि सरकार की पूरी योजना की योजना ही खा जाते हैं-

"सूखे की निशानी उनके ड्राइंगरुम में देखो,

टी.वी. का नया सेट है ऊपर उस तिपाई के।

मिसेज सिन्हा के हाथों में जो बेमौसम खनकते हैं,

पिछली बाढ़ के तोहफे हैं ये कंगन कलाई के।"[iv]

किसान की समस्याओं को लेकर सूचना तंत्र भी शिथिल नज़र आता है। मीडिया किसानों की समस्याओं को निष्पक्ष रुप से नही दिखाता है यदि दिखाता भी है तो आंशिक रूप से। कोई संजीदा गुफ्तगूं नही करता। जिससे सरकार द्वारा आग, बाढ़ जैसी गम्भीर समस्याओं के लिए प्राप्त होने वाली राहत राशि से भी वंचित रहना पड़ता है-

"ख़बरों में रेडियो ने गर कुछ कहा नहीं,

ये मत समझ कि देश में कुछ भी हुआ नहीं।

वो कह रहे हैं आग तो लगते ही बुझ गई,

मतलब नहीं कि आग में कोई जला नहीं।"[v]

मंहगाई और भुखमरी किसान की बहुत ही गम्भीर समस्या है। किसान अपना कर्ज चुकाने के लिए फसल कटते ही बहुत ही सस्ते दामों पर अनाज बेच देता है और जमाखोर सस्ते अनाज को खरीद कर बाद में उसी किसान को महंगे दामों पर बेचते हैं। जिससे अन्नदाता व बेबस किसान भूखे रहने के लिए मजबूर हो जाते हैं और उसी अन्नदाता किसान के बच्चे नमक व सूखी रोटी खाकर दिन भर खेतों पर काम करते हैं-

"पोटली में नमक थोड़ा औ दो सूखी रोटियां,

भोर से ही काम पे निकली हैं देखो बेटियां।"[vi]

भ्रष्टाचार, रिश्वत और घूसखोरी तो किसान के लिए किसी अभिशाप से कम नही है। कोई भी अधिकारी व कर्मचारी किसान का काम खाली हाथ नही करना चाहता है। पटवारी व लेखपाल महज खसरा-खतौनी के लिए भी एक मोटी रकम की मांग करता है। झूठी गवाही न देने पर दरोगा व सिपाही झूठे मुकदमे में फंसाने की धमकी देता हैं यहां तक कि अधिकारी छोटे छोटे कामों के बदले अपना मन बहलाने के लिए गरीब मजदूर व किसानों से अपनी छोटी बेटियों को साथ लाने को कहते है-

"नकल खतौनी की मांगो तो बदले में,

घूस चढ़ाने को कहते हैं क्या कह दें।

अधिकारी का मन बहलाने को कमसिन,

लेकर आने को कहते हैं क्या कह दें।"[vii]

आज भी गांवों में किसान की स्थिति उतनी ही त्रासद बनी हुई है। गांवों में आज भी साहूकार व दबंग व्यक्ति किसानों की जमीन को जबरदस्ती कब्जा कर लेते हैं, और बेचारा किसान नेताओं व असरदार व्यक्तियों के पास दर-दर की ठोकरें खाता रहता है। अस्हाय किसान व मजदूर प्रतिदिन अपमान का घूंट पीने के लिए मजबूर होता है -

"किया खेत पर क़ब्ज़ा जबरन बल,लाठी, बंदूकों से,

इकलौता है खेत कसम से दिलवा भी दो बाबू जी।

जिनके पास बड़ी लाठी है दुनिया क्या बस उसकी है,

हम क्या कुटने-पिटने को है बतला भी दो बाबू जी।"[viii]

किसान-जीवन और बाढ़-सूखा जैसी आपदाओं का तो मानो चोली-दामन का साथ है। जो किसान और मजदूर के जीवन में हर वर्ष त्यौहार की तरह आती है और बुरी तरह प्रभावित करके जाती है। फसल तो नष्ट ही हो जाती है साथ में घर व रोजमर्रा का सामना भी बहा ले जाती है तथा किसान के लिए भुखमरी छोड़ जाती है-

"सुबह का चावल नहीं है, रात का आटा नहीं

किसने ऐसा वक़्त मेरे गाँव में काटा नहीं।"[ix]

आज देश की रीति और राजनेताओं की नीतियों ने हमारी भारतीय सभ्यता को एक गम्भीर त्रासदी के मुहाने पर पहुंचा दिया है कि किसान का शासन व्यवस्था से मोहभंग हो गया है क्यों कि नेता चुनाव के समय तो स्वयं को उनका परम् हितैषी सिद्ध करने में तो कोई कसर नहीं छोड़ते परन्तु जीतने के पश्चात किये गये वादे भूलकर अगले पांच वर्षों तक कोई ख़बर नही लेते-

"अभागे गांव को ढांढस बंधाने कौन आयेगा,

इलेक्शन बाद फिर चेहरा दिखाने कौन आयेगा।"[x]

किसान समाज का बहुत ही महत्वपूर्ण और संवेदनशील अंग है उसके दिल में घर के प्रियजनों की स्मृतियां उभरती हैं मसलन वह बाबू जी के रूप में गांव के लगभग हर परिवार का प्रतिनिधित्व करता है। बाबू जी का समर्पण, त्याग और आत्मीयता इस प्रकार है कि स्वयं फटे-पुराने कुर्ता-गमछा से काम चलाता है, दिन-रात मेहनत-मजदूरी करके बच्चों की किताबों और फीस आदि का व्यवस्था करता है। खेत गिरवी रख कर बेटियों के विवाह-गवन करता है। कभी खाद तो कभी बीज की वसूली जमा करने के लिए खून पसीना एक करता है-

"कुर्ता, धोती, गमछा, टोपी सब जुट पाना मुश्किल था,

पर बच्चों की फीस समय से भरते आए बाबूजी।

रोज वसूली कोई न कोई खाद कभी तो बीज कभी

इज्जत की कुर्की से हरदम डरते आए बाबूजी।"[xi]

आज केन्द्रीकरण, भूमण्डलीकरण और बाज़ारवाद के इस दौर में हमारे देश का अन्नदाता किसान विस्थापन के लिए विवश हैं क्योंकि आधुनिक युग की चकाचौंध में उसको अपना घर चलाना मुश्किल हो गया है आवश्यक दैनिक उपयोग की वस्तुएं भी जुटा पाना दूभर हो गया है। अन्ततः वह अपना खेती का कारोबार छोड़ कर दूसरे की नौकरी व मजदूरी करने तथा गांव छोड़कर शहर जाने को मजबूर है-

"फिर किसी बुधिया की काया बे-कफन रक्खी रही,

फिर किसी होरी की बेटी बिक गयी बाजार में।

छोड़ कर घर चल पड़ा हल्कू मजूरी के लिए,

पेट तक भरता नहीं खेती के कारोबार में।"[xii]

निष्कर्ष -

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि किसान हमारे भारतीय समाज का आधार स्तंभ है क्योंकि किसान ही उत्पादक वर्ग है परंतु आजादी के बाद भी उसकी समस्याओं और शोषण की स्थितियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। नई आर्थिक नीति और विश्व बाजार तंत्र से जुड़ने के बाद महंगे बीज, महंगे उर्वरक और महंगे कीटनाशकों के प्रयोग से उत्पादन तो बढ़ा है परंतु इसके विपरीत उत्पादन के न्यूनतम मूल्य से किसान घाटे में जा रहा है और कर्ज के जाल में उलझता जा रहा है जिसका परिणाम है कि अन्नदाता किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर है। मेहनतकश किसान की कमाई पर जमाखोर और दलाल मौज कर रहे हैं। जमींदारी टूटी लेकिन जमींदार वेश बदलकर आज भी किसानों का शोषण कर रहें है क्योंकि उनके गुर्गे ही आज भी सभापति और सरपंच के रूप में बैठे हैं। पंचायती राज व्यवस्था ने तो गांव को राजनीति के दाव-पेंच में उलझा रखा है। किसान के वास्तविक मुद्दे आज भी हांसिए पर हैं आज उदारीकरण के दौर में एक बार फिर किसानों को बड़ी-बड़ी कंपनियों के हाथ लुटने के लिए छोड़ दिया गया है। ये विदेशी कंपनियां किसानों को झूठे सपने बेचकर खेती व किसान दोनों को तबाह कर रही है। यह सिर्फ किसानों की समस्या नहीं है बल्कि संपूर्ण देश के लिए चिंता का विषय है अतः हम सभी को मिलकर चिंतन करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची-

---

[i] राय हरियश, माटी राग, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2024, कवर पृष्ठ

[ii] नवले संजय, किसान-आत्महत्या : यथार्थ और विकल्प, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ सं-19

[iii] गोंडवी अदम, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ सं- 96

[iv] वही पृष्ठ सं- 72

[v] चीमा बाली सिंह, ज़मीन से उठती आवाज़, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990, पृष्ठ सं- 63

[vi] कुमार अवनीश, पत्तों पर पाज़ेब, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली 2011, पृष्ठ सं- 27

[vii] सुगम महेश कटारे, आशाओं के नये महल, रश्मि प्रकाशन, कृष्णा नगर लखनऊ 2017, पृष्ठ सं- 76

[viii] सुगम महेश कटारे, आवाज का चेहरा, रश्मि प्रकाशन, कृष्णा नगर लखनऊ 2015, पृष्ठ सं- 32

[ix] नूर मोहम्मद नूर, सफर कठिन है, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, 2014, पृष्ठ सं- 46

[x] यती ओम प्रकाश, कुछ नया मौसम तो हो, राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ सं- 32

[xi] वही पृष्ठ सं- 59

[xii] वशिष्ठ अनूप, गरम रोटी के ऊपर नमक तेल था, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ सं- 55